e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

IJIRSET
International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 10, Issue 7, July 2021

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.569

9940 572 462 | 6381 907 438 | ijirset@gmail.com | www.ijirset.com

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

भक्ति आंदोलन और सामाजिक चेतना

बीरम देव

सहायक आचार्य - हिंदी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, बूंदी

सार

भारतीय साहित्य में भक्ति आन्दोलन का अतिमहत्वपूर्ण स्थान है. इसकी महत्वपूर्णता इसी बात से साबित होती है कि इसी आन्दोलन के पादुर्भाव के समय, भारतीय समाज में एक ऐसे संघर्ष ने जन्म लिया, जिसके गर्भ से, भक्ति साहित्य की दो धाराएं उत्पन्न हुई : निर्गुण और सगुण भक्ति. ऐसा नहीं था की किसी समय-विशेष में एकाएक ही यह घटना एक महाआन्दोलन के रूप में घटित हो गयी, बल्कि इसके घटित होने के पीछे तो इतिहास के कई कालखंड थे, जिनकी अपनी विशेषताओं के कारण यह भक्ति आन्दोलन खड़ा हुआ. अपनी पुस्तक, '**हिंदी साहित्य की भूमिका**' में हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ ग्रियर्सन के मत के माध्यम से अपनी इसी बात को स्थापित करते हैं, वे लिखते हैं, "पूर्व के सहजयानी और नाथपंथियों की साधनामूलक रचनाएँ तथा पश्चिम की अपभ्रंश-धारा की वीरत्व, नीति और श्रृंगारविषयक कविताएँ उस भावी जन साहित्य के सृष्टि कर रहीं थीं, जिसके जोड़ का साहित्य संपूर्ण भारतीय इतिहास में दुर्लभ है. यह एक नयी दुनिया है, और जैसा की डॉ ग्रियर्सन ने कहा है, 'कोई भी मनुष्य जिसे पन्द्रहवी तथा बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का मौका मिला है उस भारी व्यवधान (Gap) की लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता जो (पुरानी और नयी) धार्मिक भावनाओं में विद्यमान है. हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते है, जो उन सब आंदोलनों से कहीं अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है, यहाँ तक कि वह बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी वर्तमान है. इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, भावावेश का विषय हो गया था. यहाँ से हम साधना और प्रेमोल्लास (Mysticism and rapture) के देश में आते है और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं जो काशी के दिग्गज पंडितों की जाति के नहीं, बल्कि जिनकी समता मध्ययुग के यूरोपियन भक्त बर्नर्ड ऑफ़ क्लेयरबॉक्स, थॉमस ए. केंपिन और सेंट थेरीसासे है.'

परिचय

मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आन्दोलन एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों द्वारा समाज में विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। सिख धर्म के उद्भव में भक्ति आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। [1]

पूर्व मध्यकाल में जिस भक्ति धारा ने अपने आन्दोलनात्मक सामर्थ्य से समूचे राष्ट्र की शिराओं में नया रक्त प्रवाहित किया, उसके उद्भव के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है लेकिन एक बात पर सहमति है कि भक्ति की मूल धारा दक्षिण भारत में छठवीं-सातवीं शताब्दी में ही शुरू हो गई थी। १४वीं शताब्दी तक आते-आते इसने उत्तर भारत में अचानक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। किन्तु यह धारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत कैसे आई, उसके आन्दोलनात्मक रूप धारण करने के कौन से कारण रहे, इस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है।

अब बहुत से विद्वान भक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित १९वीं-२०वीं शताब्दी के विचारों पर प्रश्न उठाने लगे हैं। अनेक विद्वान अब मध्य युग के भक्ति आन्दोलन को वैदिक परम्परा की मूल बातों का नए रूप में उदय के रूप में देखने लगे हैं। [2]भक्ति आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण भारत में आलवारों एवं नायनारों से हुआ जो कालान्तर में (800 ई से 1700 ई के बीच) उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में फैल गया।[3]

इस हिन्दू क्रांतिकारी अभियान के नेता **शंकराचार्य** थे जो एक महान विचारक और जाने माने दार्शनिक रहे। इस अभियान को चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, जयदेव ने और अधिक मुखरता प्रदान की। इस अभियान की प्रमुख उपलब्धि मूर्ति पूजा को समाप्त करना रहा।[2]

भक्ति आंदोलन के नेता **रामानन्द** ने राम को भगवान के रूप में लेकर इसे केन्द्रित किया। उनके बारे में बहुत कम जानकारी है, परन्तु ऐसा माना जाता है कि वे 15वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में रहे। उन्होंने सिखाया कि भगवान राम सर्वोच्च भगवान हैं और केवल उनके प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से तथा उनके पवित्र नाम को बार-बार उच्चारित करने से ही मुक्ति पाई जाती है।चैतन्य महाप्रभु सोलहवीं शताब्दी के दौरान बंगाल में हुए। भगवान के प्रति प्रेम भाव रखने के प्रबल समर्थक, भक्ति योग के प्रवर्तक, चैतन्य

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

ने ईश्वर की आराधना श्रीकृष्ण के रूप में की।श्री रामानुजाचार्य, भारतीय दर्शनशास्त्री थे। उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैष्णव संत के रूप में मान्यता दी गई है। रामानंद ने उत्तर भारत में जो किया वही रामानुज ने दक्षिण भारत में किया। उन्होंने रुढिवादी कुविचार की बढ़ती औपचारिकता के विरुद्ध आवाज उठाई और प्रेम तथा समर्पण की नींव पर आधारित वैष्णव विचाराधारा के नए सम्प्रदाय की स्थापना की। उनका सर्वाधिक योगदान अपने मानने वालों के बीच जाति के भेदभाव को समाप्त करना था।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन के अनुयायियों में **संत शिरोमणि रविदास, नामदेव और संत कबीर दास शामिल हैं**, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भगवान की स्तुति के भक्ति गीतों पर बल दिया।प्रथम सिक्ख गुरु और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक, गुरु नानक जी भी संत और समाज सुधारक थे। उन्होंने सभी प्रकार के जाति भेद और धार्मिक शत्रुता तथा रीति रिवाजों का विरोध किया। उन्होंने ईश्वर के एक रूप माना तथा हिन्दू और मुस्लिम धर्म की औपचारिकताओं तथा रीति रिवाजों की आलोचना की। गुरु नानक का सिद्धांत सभी लोगों के लिए था। उन्होंने हर प्रकार से समानता का समर्थन किया।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में भी अनेक धार्मिक सुधारकों का उत्थान हुआ। वैष्णव सम्प्रदाय के राम के अनुयायी तथा कृष्ण के अनुयायी अनेक छोटे वर्गों और पंथों में बंट गए। राम के अनुयायियों में प्रमुख संत कवि **तुलसीदास** थे। वे अत्यंत विद्वान थे और उन्होंने भारतीय दर्शन तथा साहित्य का गहरा अध्ययन किया। उनकी महान कृति 'रामचरितमानस' जिसे जन साधारण द्वारा 'तुलसीकृत रामायण' कहा जाता है, हिन्दू श्रद्धालुओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। उन्होंने लोगों के बीच श्री राम की छवि सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान, दुनिया के स्वामी और परब्रह्म के साकार रूप से बनाई।कृष्ण के अनुयायियों ने 1585 ईसवी में राधा-बल्लभी पंथ की स्थापना की। सूरदास ने ब्रजभाषा में सूर सागर की रचना की, जो श्री कृष्ण के मोहक रूप तथा उनकी प्रेमिका राधा की कथाओं से परिपूर्ण है।[3]

भक्ति आन्दोलन एक देशव्यापी जनआन्दोलन था । इस आन्दोलन ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म की पारस्परिक कटुता एवं संघर्ष को कम करने में हाथ बंटाया । कहा जाता है कि सूफी मत का उदय वस्तुत: हिन्दुओं के इस धार्मिक आन्दोलन की ही एक देन था । इस आन्दोलन के उपदेशकों और सुधारको ने भारत में चेतना जगायी तथा प्रगतिशील विचारों की एक नयी लहर उत्पन्न की ।

इस आन्दोलन से नये विचारों का जन्म हुआ । इसने भारतीय संस्कृति एवं समाज को एक दिशा दी । इस आन्दोलन ने एक ओर मानवीय भावनाओं को उभारा, वहीं व्यक्तिवादी विचारधारा को सशक्त बनाया, जिसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित कर उसमें सदाचार, संयम, मानवता, भक्ति एवं प्रेम आवश्यक समझा गया । भक्ति में मोक्ष तथा भोग में त्याग, जाति-पांति तथा वर्गविहीन समानतावादी समाज की स्थापना पर विशेष बल दिया गया ।

भागवत सम्प्रदाय के साथ हिन्दू धर्म में प्रचलित इस **सुधारवादी आन्दोलन** का स्वरूप ईसा से पूर्व की गयी भक्ति की अपेक्षा ज्ञान का प्रचार करना था । नवीं शताब्दी में अद्वैतवाद का सिद्धान्त ही इस आन्दोलन का प्रमुख सिद्धान्त था ।जो लोग इस युग के वास्तविक विकास को नहीं सोचते, उन्हें आश्चर्य होता है कि अचानक कैसे हो गया." यहाँ यह बात रेखांकित करने का मेरा अर्थ केवल यह है की यह समझ में आ सके की भक्ति आन्दोलन कोई आकस्मिक ही घटित हुई घटना नहीं, बल्कि इसके पीछे तो इतिहास के कईं काल-खंड मौजूद थे, जो इसके होने की अनिवार्यता को निर्धारित कर रहे थे. अपनी पुस्तक में द्विवेदीजी इस बात को पूरी तरह तथ्यात्मक रूप में सिद्ध भी करते हैं, उनके अनुसार निर्गुण भक्तों के सभी उग्र विचार, रीती-निति, साधना, वक्तव्य वस्तु के उपस्थापन की प्रणाली, छंद और भाषा पुराने भारतीय आचार्यों की दें है, यह किसी भी रूप में विदेशी या विदेशी विचारों से प्रभावित नहीं. हिंदी साहित्य की रचना या निर्माण की बात करते हुए वो अपभ्रंश के योग को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, "अब ध्यान से देखिये तो हिंदी में दो प्रकार की भिन्न-भिन्न जातियों की दो चीजें अपभ्रंश से विकसित हुई:

1. पश्चिमी अपभ्रंश से राजस्तुति, ऐहितामूलक, श्रृंगारी काव्य, नितिविषयक फुटकल रचनाएँ और लोकप्रचलित कथानक. और

2. पूर्वी अपभ्रंश में निर्गुणिया संतों की शास्त्रनिरपेक्ष विचारधारा, झाड़-फटकार, अक्खड़पना, सहजशून्य की साधना, योग पद्धति और और भक्तिमूलक रचनाएँ. यह और भी लक्ष्य करने की बात है कि यद्यपि वैष्णव मतवाद उत्तर भारत में दक्षिण की ओर से आया, पर उसमे भावावेशमूलक साधना पूर्वी प्रदेशों से आई." [4]

यह तथ्य इस बात का साक्ष्य हैं की किस प्रकार भक्ति साहित्य का निर्माण, इतिहास के गर्भ की विभिन्न गतिविधियों के कारण संभव हो सका, साथ ही यह भी की निर्गुण काव्य धारा के कवि किसी विदेशी प्रभाव के कारण विद्रोही स्वभाव के नही, बल्कि अपनी ऐतिहासिक परम्परा और सामाजिक-यथार्थ के फलस्वरूप विरोधी थे. यहाँ से हम भक्ति आन्दोलन की उन बिन्दुओं को समझने की कोशिश करेंगे की जिस कारण यह इस आन्दोलन को इसकी तत्कालीन परिस्थितियाँ उपलब्ध हुई. हालाँकि ऐतिहासिक दृष्टि से तो

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

उस समय का कोई ग्रन्थ हमे इन बातों से अवगत नहीं कराता, किन्तु शान्ति निकेतन और अन्य पंडितों ने भारत के इतिहास के क्षेत्र में बहुत अन्वेषण किये हैं, जो यहाँ उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु सामजिक-आर्थिक विकास के इतिहास के क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ. तो यहाँ कुछ सर्वमम्त तथ्यों को हम देख सकते हैं. वर्गों में विभाजित समाज में संघर्ष का रहना स्वाभाविक बात है , भारतीय समाज में जहाँ जाति की एक अन्य भूमिका है, वहां ऐसे संघर्ष हमेशा चलते रहे हैं, इसी संघर्ष की रुपरेखा को समझते हुए, मुक्तिबोध भक्ति आन्दोलन के कारकों पर अपनी मार्क्सवादी दृष्टि डालते हुए लिखते हैं, "उच्चवर्गियों और निम्नवर्गियों का संघर्ष बहुत पुराना है. यह संघर्ष निसंदेह धार्मिक, सांस्कृतिक, सामजिक क्षेत्र में अनेकों रूपों में प्रकट हुआ. सिद्धों और नाथ-सम्प्रदाय के लोगों ने जनसाधारण में अपना पर्याप्त प्रभाव रखा, किन्तु भक्ति आन्दोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ उतना किसी अन्य आन्दोलन का नहीं. पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किये, अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किये. कबीर, रैदास, नाभा, सिंपी, सेना नाई, आदि-आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की. समाज के न्यस्त-स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यम्भावी था. वह हुआ, तकलीफें हुई. लेकिन एक बात हो गयी." यह बात इस ओर इशारा करती है, कि किस तरह इतिहास के लम्बे कालखंड में दबी हुई यह जातियां एकाएक ही एक ऐसे आदोलन का निर्माण करती हैं की जिस द्वारा उनका रोष एक साहित्यिक धारा में परिवर्तित होता है. यह एक ऐसे आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित होता है, जो किसी भी स्तर पर धर्मशास्त्रवादियों, वेद-उपनिषदवादियों से मुक्त जनसाधारण द्वारा प्रसारित हो रहा था. इस विद्रोही धारा में प्रवाहित होती कईं काव्य-रचनाओं में से निर्गुण धारा का निर्माण हुआ, जिसने तत्कालीन उच्च-वर्गीय धार्मिक आडम्बरों तथा पुराणवाद इत्यादि की आलोचना की. परन्तु सवाल यह उठता है, आखिर वह कौन से कारक थे की जिस कारण विद्रोह की यह आवाज़ पुरे भारतवर्ष में तेज़ी से फ़ैल गयी, आखिर इससे पहले भी तो जाति-व्यवस्था के विरुद्ध लोग बात करते ही आये थे, द्विवेदीजी इस ओर इशारा करते हुए लिखते हैं, "केवल एक सवाल और रह जाता है कि कबीर के पहले भी तो ये बातें वर्तमान थी, फिर वे उतनी प्रभावशाली क्यों न हो सकी जितनी कबीर आदि की बातें हो सकीं? इस बात के कई तरह के जवाब दिए गए हैं. परन्तु इसका कारण निसंदेह राजनितिक-सत्ता थी. किसी-किसी ने कहा है कि मुसलामानों के आगमन के पूर्व हिन्दू राजा इन तथाकथित नीच जातियों की आशा-आकांक्षा को पनपने नहीं देना चाहते थे और किसी दूसरे ने कहा है कि पहले तो ये छोटी समझी जानेवाली जातियां अकेले हिन्दुओं से सताई जा रही थी, अब मुसलामानों से सताई जाने लगी; इस प्रकार उन्हें अपनी स्तिथि सुधारकर अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने पड़े, ये दोनों ही बातें युक्तियुक्त नहीं जंचती. मेरा विचार यह है कि ऐसी बातें समाज के किसी न किसी स्तर में वर्तमान तो जरुर थी, पर अधिकांश में उन लोगों द्वारा प्रचारित होती थीं, जो शास्त्र और वेद को नहीं मानते थे. फिर जन-साधारण में प्रचलित पौराणिक ठोस रूपों से उनका कोई सबंध नहीं था. कबीरदास के गुरु रामानंद से शिष्यत्व ग्रहण करके जन-साधारण में उनकी शास्त्र-सिद्धता का विश्वास पैदा किया और राम-नाम को अपनाकर जन-साधारण के परिचित भगवान से अपने भगवान की एकात्मकता साबित की. उन्होंने रूपकों द्वारा योगमार्ग, वैष्णवमत आदि अत्यधिक प्रचलित जनमत की अपने ढंग पर व्याख्या करके जन-साधारण का विश्वास अर्जन किया. [5]

इस प्रकार एक बार शास्त्र और लोक-विश्वास का जरा सा नाम-मात्र का सहारा पाते ही यह मत देश के इस सिरे से उस सिरे तक फ़ैल गया." ऐतिहासिक दृष्टि से यदि हम इस पुरे विषय की विवेचना करें तो यही पाएंगे की इतिहास के किसी भी मोड़ पर, इतनी उग्रता के साथ जातिवाद और ब्राह्मणवाद इत्यादि को चुनौती नहीं मिली थी, एक तो इसका कारण यह था की उन कालखंडों में धर्म की निति-निर्देशन ऊंची जातियों से होते थे जो संस्कृत आदि में अपनी पुस्तकें लिखते थे जिस कारण निम्नजातियों के साथ न ही उनका संवाद संभव था और न ही उनमे भुक्तभोगी सी तीव्रता ही थी. निर्गुण धारा के कवियों के साथ अच्छी बात यह थी की वह आत्मबोध और अनुभव के माध्यम से, समाज के भीतर रहते हुए, अत्याचारों, कष्टों को झेलते हुए, ईश्वर की तलाश में सलंग्न थे. इसीलिए इन्होने ज्ञान(वेद-पुराण) से अधिक प्रेम पर जोर दिया, ज्ञान की आलोचना इनके अक्खड़ होने का साक्ष्य थी. इनकी इसी प्रवृत्ति को द्विवेदीजी कुछ यों प्रस्तुत करते हैं, "इस विषय में तो कोई संदेह ही नहीं कि शास्त्रज्ञान से वंचित होने पर भी इस श्रेणी के साधक बहुश्रुत थे. इस बहुश्रुतता के कारण वे अनायास ही अनुभव-सम्मत सत्य को संग्रह कर सकते थे. इसीलिए उनका मत न तो किसी आचार्य-विशेष के मत का हू-ब-हू उल्था था और न बे सर-पैर की बातों की बेमेल खिचड़ी. सभी विषयों में उनका आत्मबोध मत है. वेदान्तियों के निर्गुण ब्रह्म उनके उपास्य नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने एकाधिक बार उनमे गुण का आरोप किया है. प्रेम पर इन संतों ने इतना अधिक जोर दिया है कि भक्त के बिना भगवान को भी अपूर्ण बताया है. यह भावना केवल ज्ञानगम्य ब्रह्म को आश्रय करके नहीं चल सकती. भक्तरूपी प्रिय के लिए भगवानरूपी प्रिय के सदा व्याकुल रहने की कल्पना निर्गुण और निरासक्त ब्रह्म को आश्रय करके नहीं चल सकती, प्रेम के इस रूप के लिए एक संसक्त और व्यक्तिगत भगवान की पूर्वकल्पना नितांत आवश्यक है. यदि उन्हें विशुद्ध ज्ञानमार्गी मान लिया जाएगा तो उक्त बात अबोध्य हो जाएगी. जिन पंडितों ने इन संतों को ज्ञानाश्रयी कहा है, वे सचमुच इस चक्कर में पड़ गए हैं और तात्विक दृष्टि से विचार करने जाकर यह कहने को बाध्य हुए हैं कि "न तो हम इन्हें पुरे अदैत्वादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी." (**पं. रामचन्द्र शुक्ल**). परन्तु इसका अर्थ नहीं कि ये साधक अपने विचारों में स्पष्ट नहीं थे." तो इस प्रकार जो बात निकल कर सामने आती है वह यही है की इस आन्दोलन और इस धारा के भक्त प्रेम के ऐसे स्वरूप को प्रस्तुत कर रहे थे जिसका सबंध किसी भी तरह से वेद-पुरानों या भागवत साहित्य से नहीं था और जो व्यक्तिगत आनंद की अनुभूति पर आधारित था, जिसमे सामाजिक चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका थी जिस कारण ही यह भक्त बड़े स्तर पर ब्राह्मणवाद,

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

जातिवाद का विरोध कर रहे थे. यही से हम उस द्वंद्व में भी दृष्टि डालेंगे की जिसके उत्पन्न होते ही भक्ति आन्दोलन दो धाराओं में बंट गया. और आखिर कैसे और क्यों ब्राह्मणवाद, जातिवाद के विरोध में शुरू हुआ आन्दोलन अंत में उसी धारा में मग्न भी हो गया? मुक्तिबोध अपने निबंध में बड़े ही आलोचनात्मक ढंग से इस समस्या की विवेचना करते हैं.

विचार-विमर्श

यह आन्दोलन न्यूनाधिक पूरे दक्षिणी एशिया (भारतीय उपमहाद्वीप) में फैला हुआ था। यह लम्बे काल तक चला।इसमें समाज के सभी वर्गों (निम्न जातियाँ, उच्च जातियाँ, स्त्री-पुरुष, सनातनी, सिख, मुसलमान आदि) का प्रतिनिधित्व रहा।इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप संस्कृत के बजाय क्षेत्रीय भाषाओं में भारी मात्रा में हिन्दू साहित्य की रचना हुई जो मुख्यतः भक्ति काव्य एवं संगीत के रूप में है।भक्ति आन्दोलन के द्वारा हिन्दू समाज ने इस्लाम के प्रचार, जोर-जबरजस्ती एवं राजनैतिक हस्तक्षेप का कड़ा मुकाबला किया। इसका इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा। (**सूफीवाद**)

अद्वैतवाद के आचार्य शंकराचार्य ने दक्षिण भारत में जन्म लिया था, जिन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों से बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के विद्वानों एवं प्रचारकों को सभी जगहों पर खुले शास्त्रार्थ के द्वारा परास्त किया ।उन्होंने दक्षिण भारत में इस मत का प्रबल प्रचार किया । स्वामी रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ । उन्होंने शुद्धाद्वैत का उपदेश साधारण जनता को दिया । इसे भक्ति मार्ग का एकमात्र सरल, सुलभ माध्यम मानकर अपनाया । इसके उपरान्त तुर्क अफगान युग में हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों जातियों में ऐसे ही सन्त, महात्माओं का अभिर्भाव हुआ ।इन सन्तों ने साधारण बोलचाल की भाषा में भजन-गीत आदि के माध्यम से साधारण जनता को प्रभावित किया । उन्होंने बहुदेववाद तथा धर्मांधता का निराकरण करके एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया ।भक्ति आन्दोलन का पहला प्रमुख कारण हिन्दू धर्म में धर्मांधता, बहुदेववाद और कर्मकाण्डों की प्रमुखता का होना था, जिसका पहला कारण एकेश्वरवाद के प्रचार की आवश्यकता तथा भक्ति मार्ग की तत्कालीन मुस्लिम कट्टरता को धार्मिक सहिष्णुता में बदलना था ।[6]

इस आन्दोलन का दूसरा कारण सूफी सन्तों तथा अन्य हिन्दू सन्त-महात्माओं का एक दूसरे के सम्पर्क में आना तथा उनके द्वारा धर्मांधता के दोषों से बचे रहना था । हिन्दू धर्म गे वैदिक जटिल कर्मकाण्डों के स्थान पर भक्ति का सीधा-सच्चा मार्ग बताना इस आन्दोलन का तीसरा प्रमुख कारण था । सामाजिक, धार्मिक समानता एवं सहिष्णुता का भाव लोगों के मन में पैदा करना इसका चौथा कारण था । ईश्वर और मनुष्य एक है, यही इसका मूल सिद्धान्त था ।मुक्तिबोध अपने निबंध में शुरू से ही इस बात पर जोर देते हैं कि किसी भी साहित्य के ठीक-ठीक विश्लेषण के लिए उस युग की मूल गतिमान सामाजिक शक्तियों से बनने वाले सांस्कृतिक इतिहास को जानना जरूरी होता है. **कबीर** की आधुनिकता और उनके आज भी प्रासंगिक होने का करण भी उनके अनुसार उस युग के सांस्कृतिक इतिहास में छुपा हुआ है. सांस्कृतिक इतिहास की पड़ताल करते हुए वे वही बात स्थापित करते हैं की किस प्रकार, भक्ति आन्दोलन की आत्मा का स्रोत भी, वर्ग संघर्ष पर ही आधारित था की जहाँ उच्च-वर्ग और निम्न वर्ग के मध्य प्राचीन समय से संघर्ष चल रहा था, और भक्ति की इस चिंगारी ने एकाएक ही एक बड़े आन्दोलन कि स्थापना की. महराष्ट्र की संत परम्परा के संदर्भ में वे लिखते हैं, "जहाँ तक महाराष्ट्र की संत परम्परा का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि मराठी संत-कवि, प्रमुखत:, दो वर्गों से आये थे. एक ब्राह्मण और दूसरे ब्राह्मणेतर. इन दो प्रकार के संत-कवियों के मानव-धर्म में बहुत कुछ समानता होते हुए भी, दृष्टि और रुझान का भेद भी था. ब्राह्मणेतर संत-कवि की काव्य-भावना अधिक जनतंत्रातमक, सर्वांगीण और मानवीय थी. निचली जातियों की आत्म-प्रस्थापना के उस युग में, कट्टर पुराणपंथियों ने जो-जो तकलीफें इन संतों को दी हैं, उनसे **ज्ञानेश्वर** जैसे प्रचंड प्रतिभावान संत का जीवन अत्यंत करुण, कष्टमय और भयंकर दृढ हो गया." आगे वह महराष्ट्र के भक्ति आन्दोलन में जनता की भागीधारी के बारे में लिखते हैं, "ग्यारहवीं सदी से महाराष्ट्र की गरीब जनता में भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव अत्यधिक हुआ. राजनैतिक दृष्टि से, यह जनता हिन्दू-मुस्लिम दोनों प्रकार के सामन्ती उच्चवर्गियों से पीड़ित रही. संतों की व्यापक मानवतावादी वाणी ने उन्हें बल दिया. कीर्तन-गायन ने उनके जीवन में रस-संचार किया. **ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि संतों** ने गरीब किसान और अन्य जनता का मार्ग प्रशस्त किया. इस सांस्कृतिक आत्म-प्रस्थापना के उपरांत सिर्फ एक और कदम की आवश्यकता थी." और आगे वह इस कदम को संत रामदास और शिवाजी जैसे नेता की प्राप्ति के रूप में रेखांकित करते हैं. लेकिन मूल बात जो इस पूरी चर्चा से निकल कर आती है वो यही है की इस आन्दोलन की असली आत्मा या असली स्रोत जनता या निचली जातियों का वो भयंकर शोषण था, जिसकी तस्वीर भक्ति-साहित्य के माध्यम से यह संत-कवि एवं निर्गुण धारा के कवि प्रस्तुत कर रहे थे. निसंदेह यह कवि समुदाय समाज के शोषक तबकों के विरुद्ध खुल कर बोल और लिख रहे थे, जिसका माध्यम आध्यात्म और भक्ति था. इस पूरी परिस्थिति में की जब इन कट्टरपंथी शोषक तत्वों के खिलाफ जनसमुदाय एकत्रित हो रहे थे, उस समय शोषक तत्वों में यह भावना पैदा हो गयी थी की निम्नजातीय संतों से भेदभाव अच्छा नहीं. **मुक्तिबोध** लिखते हैं, "अब ब्राह्मण शक्तियाँ स्वयं इन संतों का कीर्तन-गायन करने लगी.

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

किन्तु इस कीर्तन-गायन के द्वारा वे उस समाज की रचना को, जो जातिवाद पर आधारित थी, मजबूत करती जा रही थी. एक प्रकार से उन्होंने अपनी परिस्तिथि से समझौता कर लिया था. दूसरे, भक्ति आन्दोलन के प्रधान सन्देश से प्रेरणा प्राप्त करने वाले लोग ब्राह्मणों में भी होने लगे थे. रामदास, एक प्रकार से, ब्राह्मणों में से आये हुए अंतिम संत हैं, इससे पहले एकनाथ हो चुके थे. कहने का सारांश यह है कि नवीन परिस्तिथि में यद्यपि युद्ध-सत्ता (राज-सत्ता) शोषित और गरीब तबकों आये हुए सेनाध्यक्षों के पास थी, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में पुराने सामन्तवादियों और नए सामंतवादियों में समझौता हो गया था. नए सामन्तवादी कुनबियों, धनघरों, मराठों और अन्य गरीब जातियों से आये हुए सेनाध्यक्ष थे. इस समझौते का फल यह हुआ कि पेशवा ब्राह्मण हुए, किन्तु युद्ध सत्ता नवीन सामंतवादियों के हाथ में रही." इस तरह मुक्तिबोध इस बात को रेखांकित करते हैं की कैसे जो आन्दोलन जातिवाद, ब्राहमणवाद के विरुद्ध शुरु हुआ अंततः उसी में विलीन हो गया. दूसरी तरफ उत्तर भारत में भी इन निर्गुण कवियों के में से ही एक और धारा उत्पन्न हुई जिसने निर्गुण के विरुद्ध अपनी आवाज़ स्थापित की. बड़े स्तर पर निचली जातियों में आत्म-विश्वास पैदा हो रहा था था, उनमे आत्म-गौरव का जो भाव हुआ. समाज की शासक सत्ता को यह कब अच्छा लगता. मुक्तिबोध लिखते हैं, "निर्गुण मत के विरुद्ध सगुण मत का प्रारंभिक प्रसार और विकास उच्च वंशियों में हुआ. निर्गुण मत के विरुद्ध सगुण का संघर्ष निम्न वर्गों के विरुद्ध उच्चवंशीय संस्कारशील अभिरुचि वालों का संघर्ष था. सगुण मत विजयी हुआ. उसका प्रारंभिक विकास कृष्णभक्ति के रूप में हुआ. यह कृष्णभक्ति कई अर्थों में निम्नवर्गीय भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित थी. उच्च-वर्गियों का एक भावुक तबका भक्ति आन्दोलन से हमेशा प्रभावित होता रहा, चाहे वह दक्षिण भारत में हो या उत्तर भारत में. इस कृष्णभक्ति में जातिवाद के विरुद्ध कई बाते थी.[7]

वह एक प्रकार से भावावेशी व्यक्तिवाद था.....यद्यपि उत्तर-भारतीय कृष्णभक्ति वाले कवि उच्चवंशीय थे, औत निर्गुण मत से उनका सीधा संघर्ष भी था, किन्तु हिन्दू समाज के मूलाधार यानि वर्णाश्रम-धर्म के विरोधियों के जातिवाद-विरोधी विचारों पर सीधी चोट नहीं की थी. किन्तु उत्तर भारतीय भक्ति आन्दोलन पर उसका प्रभाव निर्णायक रहा." इस तरह कृष्णभक्ति की धारा के माध्यम से एक स्तर पर निर्गुण संतों के जातिविरोधी विचारों को कुंद किया गया, निर्गुण मत में निम्नजातीय धार्मिक जनवाद का पूरा जोर था, उसका क्रांतिकारी सन्देश था. कृष्णभक्ति में वह बिलकुल कम हो गया, किन्तु फिर भी निम्नजातीय प्रभाव अब भी पर्याप्त था. तुलसीदास के आविर्भाव से सगुण ने निर्गुण धारा को पूरी तरह अपने कबज़े में लेकर पुनः उसमे पुराणवाद को स्थापित किया, मुक्तिबोध इस बारे में लिखते हैं, "**तुलसीदास ने भी निम्नजातीय भक्ति स्वीकार की**, किन्तु उसको अपना सामाजिक दायरा बतला दिया. निर्गुण मतवाद जो जनोन्मुखरूप और उसकी क्रांतिकारी जातिवाद-विरोधी भूमिका के विरुद्ध तुलसीदास ने पुराण-मतवादी स्वरूप प्रस्तुत किया......राम निषाद और गुह का आलिंगन कर सकते थे, कंतु निषाद और गुह ब्राह्मण का अपमान कैसे कर सकते थे. दार्शनिक क्षेत्र का निर्गुण मत जब व्यावहारिक रूप से ज्ञानमार्गी भक्तिमार्ग बना, तो उसमे पुराण-मतवाद को स्थान नहीं था. कृष्णभक्ति के द्वारा पौराणिक कथाएँ घुसी, पुराणों ने रामभक्ति के रूप में आगे चलकर वर्णाश्रम धर्म की पुनर्विजय की घोषणा की." इस तरह तुलसीदास के समय तक कृष्णभक्ति के माध्यम से उच्चवर्ग का जो हस्तक्षेप भक्ति आन्दोलन में हुआ था, उसने उसमे भावावेशी व्यक्तिवाद से जातिवाद की आलोचना तो जारी रखी, लेकिन साथ ही साथ पुराणों और वेदों को फिर प्रतिस्थापित करने की कोशिशें भी होती रही, जिसे तुलसीदास ने सम्पूर्ण किया. और इस तरह जो आन्दोलन जातिवाद-ब्राह्मणवाद के विरोध से शुरू हुआ, वो अंततः उसी में तिरोहित हो गया. मुक्तिबोध लिखते हैं, "यदि हम धर्मों के इतिहास को देखें, तो यह ज़रूर पायेंगें कि तत्कालीन जनता की दुरवस्था के विरुद्ध उसने घोषणा की, जनता को एकता और समानता के सूत्र में बांधने की कोशिश की. किन्तु ज्यों-ज्यों उस धर्म में पुराने शासकों की प्रवृति वाले लोग घुसते गये और उनका प्रभाव जमता गया, उतना-उतना गरीब जनता का पक्ष न केवल कमज़ोर होता गया वरन उसको अंत में उच्चवर्गों की दासता-धार्मिक दासता भी फिर से ग्रहण करनी पड़ी." इस तरह यह निष्कर्ष निकलता है कि जो भक्ति आन्दोलन जनसाधारण से शुरू हुआ और जिसमे सामाजिक कट्टरपन के विरुद्ध जनसाधारण की सांस्कृतिक आशा-आकांक्षाएं बोलती थी, उसका मनुष्य-सत्य बोलता था, उसी भक्ति आन्दोलन को उच्च-वर्गियों ने आगे चलकर अपनी तरह बना लिया, और उससे समझौता करके, और फिर उस पर अपना प्रभाव कायम करके, और अनन्तर जनता के अपने तत्वों को उनमे से निकालकर, उन्होंने उस पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया.[8]

परिणाम

बालकृष्ण भट्ट के लिए भक्तिकाल की उपयोगिता अनुपयोगिता का प्रश्न मुस्लिम चुनौती का सामना करने से सीधे सीधे जुड़ गया था। इस दृष्टिकोण के कारण भट्ट जी ने मध्यकाल के भक्त कवियों का काफी कठोरता से विरोध किया और उन्हें हिन्दुओं को कमजोर करने का जिम्मेदार भी ठहराया। भक्त कवियों की कविताओं के आधार पर उनके मूल्यांकन के बजाय उनके राजनीतिक सन्दर्भों के आधार पर मूल्यांकन का तरीका अपनाया गया। भट्ट जी ने मीराबाई व सूरदास जैसे महान कवियों पर हिन्दू जाति के पौरुष पराक्रम को कमजोर करने का आरोप मढ़ दिया। उनके मुताबिक समूचा भक्तिकाल मुस्लिम चुनौती के समक्ष हिन्दुओं में मुल्की जोश जगाने में नाकाम रहा। भक्त कवियों के गाये भजनों ने हिन्दुओं के पौरुष और बल को खत्म कर दिया।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

रामचन्द्र शुक्ल जी ने भक्ति को पराजित, असफल एवं निराश मनोवृत्ति की देन माना था। अनेक अन्य विद्वानों ने इस मत का समर्थन किया जैसे, बाबू गुलाब राय आदि। डॉ॰ राम कुमार वर्मा का मत भी यही है -: मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिंदुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम इस मत का खंडन किया तथा प्राचीनकाल से इस भक्ति प्रवाह का सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपने मत को स्पष्टत: प्रतिपादित किया। उन्होंने लिखा - "यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मन्दिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की धारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में, फिर उसे उत्तरभारत में, प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।"हिन्दू धर्म में व्याप्त बाह्य आडम्बरों, पाखण्ड तथा बहुदेववाद के पर्दे के नीचे छिपे अनेकानेक दोषों को दूर करने हेतु इस आन्दोलन का जन्म व विकास हुआ । इसी तरह हिन्दू धर्म में पूजा-पाठ, व्रत, उपवास, हिन्दू धर्म में कर्मकाण्ड के अनेक विधि-विधान प्रचलित थे, जो कठिन थे ।इन्हें सरल बनाने हेतु इस आन्दोलन ने कार्य किया । हिन्दू धर्म में व्याप्त भेदभाव को दूर कर समानता का भाव पैदा करना, बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का सिद्धान्त प्रचारित करना, मोक्ष प्राप्ति हेतु सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाना इसके प्रमुख उद्देश्य हैं । कबीर ने ईश्वर को विराट सत्ता बताते हुए उनका निवास सच्चे हृदय में बताया है ।भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त एवं सुधारकों में रामानुज, रामानन्द, चैतन्य, ब्राह्मण, नामदेव, मीराबाई, कबीर, रैदास, नानक दक्षिण के आलवार सन्त थे । आलवार सन्त ईसा की 7-8वीं सदी में दक्षिण भारत में हुए ।निम्न जाति में जन्म लेकर भी उनमें भक्ति भावना, उच्चकोटि की मानवीयता, सदाचारशीलता एवं अद्‌भुत चमत्कार मिलता है । अत्यन्त सरल-सहज विनम्रतापूर्वक जीवन जीने वाले इन सन्तों ने अपनी भक्तिमय वाणी से जन-जन के हृदय में स्थान बनाया और ईश्वर के श्री चरणों में अपना जीवन बिताया ।

स्वामी रामानुजाचार्य: सन् 1016 में दक्षिण के तिरूकुदूर नामक क्षेत्र में केशव भट्ट ब्राह्मण के घर जन्मे स्वामी रागानुजाचार्य ने अपने पिता की मृत्यु के बाद कांची के मठाधीश के साथ रहकर वेद-वेदांगों का ज्ञान प्राप्त किया । उन्होंने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया ।आत्मा और परमात्मा को थोड़ा भिन्न बताते हुए उन्होंने भगवान् विष्णु को ही सर्वेश्वर व सर्वात्मा माना, जो मनुष्य पर दया करने के लिए मनुज अवतारों में जन्म लेते हैं । विष्णु के साथ लक्ष्मी की उपासना पर भी बल दिया । मनुष्य को केवल कर्म करना चाहिए, फल की आशा नहीं करनी चाहिए । भक्ति द्वारा ईश्वर तथा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है ।
रामानन्दाचार्य: स्वामी रामानन्द भी दक्षिण के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । भगवान् विष्णु को अपना इष्ट मानते थे । वे जातिप्रथा के घोर विरोधी थे । उन्होंने भक्ति को ही मोक्ष का एकमात्र साधन बताया । उनके प्रमुख शिष्यों में कबीर, रैदास, नरहरि, पीपा, सुखानन्द थे ।[7]
माधवाचार्य: वे बाल्यावस्था से ही संसार से विरक्त हो गये थे । वे विष्णु के उपासक थे । उनके सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान से ही भक्ति उत्पन्न होती है । मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य “हरि दर्शन” करना है ।
निबंकाचार्य: मद्रास के बेलारी जिले में स्थित निबंपुर में पैदा हुए थे । उन्होंने विशिष्टा द्वैतवाद, द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद में समन्वयवाद स्थापित कर मध्यम मार्ग अपनाया । उन्होंने कृष्ण को ईश्वर का अवतार माना । श्रीमद्‌भागवत एवं भगवद्‌गीता के उपदेशों का पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति मानी है । उन्होंने लीला तत्त्व को वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख अंग बनाया ।
बल्लभाचार्य: वल्लभाचार्य कृष्ण भक्ति शाखा के महान् सन्त थे । उन्होंने सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर अपने उपदेशों और विचारों का दृढ़तापूर्वक प्रचार किया । उन्होंने सांसारिक मोह-माया का त्याग कर ईश्वर-भक्ति का मार्ग अपनाने पर जोर दिया । उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त को अपनाया तथा भगवान् कृष्ण में एकाकार होने की शिक्षा दी ।शैवाचार्य: वैष्णव भक्तों के आलवार सन्तों की तरह शैव भक्तों में नायनार भक्तों का अविर्भाव हुआ । जिस प्रकार आलवार. भक्तों ने भगवान विष्णु को सर्वातरयामी माना है, उसी प्रकार नायनार सन्तों ने भगवान् शिव को माना उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण सृष्टि में शिव व्याप्त हैं, चेतना में, ब्रह्माण्ड में उनका ही अनादि एवं सत्य रूप है । शैवों ने सृष्टि की पांच प्रक्रियाएं बतायी है:
1. सृष्टि की रचना,
2. सृष्टि का पालन,
3. सृष्टि का विनाश,
4. जीव की मोह-माया से आसक्ति और,
5. शिव की कृपा से जीव की मुक्ति ।[6]
श्री चैतन्य महाप्रभु: बंगाल में जन्मे चैतन्य महाप्रभु ने 25 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर भौतिक जीवन से विरक्ति ले ली । उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हरि-भक्ति में लगा दिया । 6 वर्षों तक भारत में घूमकर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया । उनका एक शिष्य अछूत था ।
अपने इस अछूत शिष्य को गले लगाते हुए उन्होंने कहा था: “हरिदास, तुम्हारा यह शरीर मेरा अपना है, प्रेम एवं आत्मसमर्पण की भावना से तुम्हारा शरीर एक मन्दिर के समान है ।” चैतन्य महाप्रभु ने बाह्य आडम्बरों तथा झूठे कर्मकाण्डों का विरोध करके

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|

|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||

|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

शुद्धाचार पर अधिक बल दिया । उन्होंने कहा: “प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर, अपने जीवन्, शरीर एवं आत्मा को ईश्वर में समर्पित कर देना चाहिए । रात-दिन ईश्वर की सुश्रुषा में निमग्न रहना चाहिए ।”

सन्त कबीर: कबीरदास निर्गुण काव्यधारा के ज्ञानमार्गी सना एवं समाज-सुधारक कवि थे । नीरू एवं नीमा जुलाहे दम्पत्ति के यहां पालित-पोषित कबीरदासजी के गुरु रामानन्दजी थे । कबीरदासजी अनपढ़ थे, तथापि जीवन-दर्शन एवं उनके धर्म सम्बन्धी ज्ञान के आगे कोई ठहर नहीं पाता था । कबीरदासजी ने तत्कालीन समय में व्याप्त धार्मिक आडम्बरों कर्मकाण्डों, पूजा-पाठ के विधि-विधानों का जमकर विरोध किया ।उधर मुस्लिम धर्म में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों, रोजा रखने तथा अजान देने पर भी व्यंग्य किया । कबीरदासजी ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म के ठेकेदारों को जमकर फटकारा । उन्होंने जनता को ईश्वर भक्ति एवं धर्म का सीधा-सच्चा मार्ग बताया ।
कबीरदासजी ने ईश्वर को सर्वव्यापी कहा, आत्मा एवं परमात्मा को एक ही बताया । ईश्वर को निर्गुण रूप में स्वीकार करते हुए उन्होंने मूर्तिपूजा, माला फेरना, तीर्थाटन करना तथा मूंछ मुंडाना आदि का भी विरोध किया ।कबीर ने अपनी निर्भीक एवं स्पष्ट वाणी में धार्मिक समन्वयवाद, इन्द्रिय निग्रह, सदाचरण, आचरण की शुद्धता, माया-मोह के त्याग, गुरा महिमा, नाम स्मरण, आत्मा एवं परमात्मा की एकरूपता तथा अहिंसा को महत्त्व दिया । उनकी सारी वाणियां उनके शिष्यों द्वारा ”बीजक’ में संग्रहित हैं ।[5]

गुरुनानक देवजी: लाहौर के तलवंडी ग्राम में सन् 1499 को एक खत्री परिवार में जन्मे गुरुनानक देवजी को सिक्स सम्प्रदाय का संस्थापक माना जाता है । बचपन से ही वे परोपकारी और दानी स्वभाव के थे ।
सांसारिक जीवन एवं मिथ्या आडम्बरों का त्याग कर वे ईश्वर भक्ति में लीन हो गये । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया । हिन्दू और सिक्स धर्म का समन्वित आदर्श नानक पंथ में मिलता है ।

महात्मा कबीर की भांति उन्होंने सभी को समान मानते हुए शुद्धाचरण पर बल दिया । उन्होंने कहा कि: “संसार की अपवित्रताओं के मध्य पवित्र बने रहना, सबको समान मानना ही धर्म है ।” उन्होंने मुसलमानों को उपदेश देते हुए कहा कि: “दयालुता की मस्जिद बनाओ, ईमानदारी की नमाज पढ़ो, नम्रता को खतना मानो सौजन्यता को रोजा समझो, सदाचार को काबा मानो, तभी तुम सच्चे मुसलमान बनोगे ।”

नामदेव: 13वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में जन्मे इस सन्त ने धार्मिक एकता पर बल देते हुए जातीय भेदभाव की घोर निन्दा की । नाथ पंथ को अपनाते हुए सर्वव्यापक निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया ।
उन्होंने मुसलमानों पर भी अपनी भक्ति का ऐसा प्रभाव डाला कि कई मुसलमान उनके शिष्य बन गये । उनका कहना था कि: ‘भक्ति-भाव के लिए न तो मन्दिर चाहिए और न मस्जिद ।’

ज्ञानदेव: 13वीं सदी के अन्त में महाराष्ट्र के पंढरपुर में जन्मे नामदेवजी विष्णु के उपासक थे । वे कृष्ण विट्ठल स्वामी को पूजते थे । उन्हीं के संकीर्तन में लगे रहते थे । वै अद्वैतवादी थे । उन्होंने जनभाषा मराठी में ज्ञानेश्वरी लिखी थी । ज्ञान भक्ति का सुन्दर समन्वय करते हुए उन्होंने कहा कि-ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का भक्तिपूर्वक चिन्तन एवं मनन करना चाहिए । ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय सगुण भक्ति ही है ।
सन्त रैदास: सन्त रैदास स्वामी रामानन्द के शिष्य थे । वे वैष्णव पंथी थे । निम्न कुल में जन्मे सन्त रैदास को जाति-पांति के भेदभाव व उपेक्षा का घोर अपमान सहना पड़ा । उनके सजातीय अनुयायी एक पृथक पंथ में परिवर्तित हो गये । उन्होंने भी शुद्धाचरण, मानव की समानता, धार्मिक समन्वय पर बल दिया ।
सूरदास, तुलसीदास व मीराबाई: सूरदास तथा मीराबाई ने कृष्ण के प्रति अपना अनन्य भक्तिभाव एवं समर्पण भाव व्यक्त किया, तो तुलसीदास ने राम के प्रति अपना एकनिष्ठ भाव व्यक्त करते हुए उनकी आदर्श चरित्र गाथा को जन-जन तक रामचरितमानस के माध्यम से पहुंचाया ।[4]

निष्कर्ष

भक्ति आन्दोलन का सर्वाधिक प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में पड़ा, जिसने जातिगत भेदभाव को दूर करते हुए मानव मात्र की समानता पर बल दिया । हिन्दू-मुस्लिम एकता का सूत्रपात किया । निम्न वर्ग के प्रति सम्मान भाव बढ़ाया ।

सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया । धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों द्वारा फैलाये गये कर्मकाण्ड, बाह्य आडम्बरों व अन्धविश्वासों को कम किया । गुरु के महत्त्व को बढ़ाया । राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीयता: को बल मिला । हिन्दुओं और मुसलमानों के

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.569|
|| Volume 10, Issue 7, July 2021 ||
|DOI:10.15680/IJIRSET.2021.100329 |

बीच अनूठा समन्वय एवं सौहार्द्र भाव विकसित हुआ, जिससे वे एक-दूसरे के पूजास्थलों में जाकर नतमस्तक होने लगे धार्मिक व सामाजिक संकीर्णता थोड़ी दूर हुई ।

इस तरह स्पष्ट होता है कि भक्ति आन्दोलन तत्कालीन समय का **क्रान्तिकारी** आन्दोलन था । उस युग के सन्त एवं महात्माओं ने अपने धार्मिक विचारों, सिद्धान्तों और उपदेशों से सामान्य जनता को सामाजिक व धार्मिक एकता का न केवल पाठ पढ़ाया, वरन् उन्हें ईश्वर प्राप्ति एवं धर्म का सच्चा मार्ग दिखलाया ।

तत्कालीन समय से लेकर आज तक उन सन्तों की विचारधारा एवं आदर्श ने लोगों का पथप्रदर्शन किया है । उन सन्तों और महात्माओं के सच्चे अनुयायी आज भी उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने जीवन को सार्थक व पूर्ण बना रहे है तथा मानव धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं ।[8]

संदर्भ

1. Johar, Surinder (1999). Guru Gobind Singh: A Multi-faceted Personality. MD Publications. p. 89. ISBN 978-8-175-33093-1.
2. ↑ Pechilis Prentiss (2014), pp. 15-16.
3. ↑ [Schomer & McLeod (1987), पृष्ठ 1.]
4. भक्तिकाव्य से साक्षात्कार (गूगल पुस्तक ; लेखक - कृष्णदत्त पालीवाल) 1998
5. कविता कोश - हिन्दी काव्य का अकूत खज़ाना, 2001
6. संतों के समक्ष हार चला था असहिष्णु इस्लाम (प्रवक्ता), 1996
7. साझी सांस्कृतिक विरासत, 1994
8. दैनिक जागरण, 29 अगस्त 2006, पृष्ठ 11

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 7.569

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

Scan to save the contact details

www.ijirset.com